**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 40-42**

**I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)**
**e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)**
**Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026**

# हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्ष

**डॉ0 कृष्णकान्त चन्द्रा**

प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0) भारत

**Received-04.01.2026, Revised-11.01.2026, Accepted-18.01.2026** **E-mail: dr.kkchandra@gmail.com**

***सारांशः भारत में नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण और उत्पीड़न की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप ही आदिवासी लेखन और विमर्श का आरम्भ मिलता है। विमर्श के कठघरे में खड़े शोषित आदिवासियों की कहानी दयनीय है। सदियों से इन्हें आधुनिक समाज द्वारा प्रताड़ना ही मिली है। भारत की सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की नीति से बाजारवाद का मार्ग प्रशस्त कर दिया। पूँजीवादी सोच से उत्पन्न नीतियों के चलते जल, जंगल, जमीन से हाथ धोने लगे। इतना ही नहीं भूख और लाचारी से तंग आकर ये अपनी अस्मिता और अस्तित्व से भी वंचित होने लगे हैं। आदिवासी समस्या जैसे जल, जंगल, जमीन, शिक्षा, प्रदूषण, विस्थापन, भूख, धर्मान्तरण, राजनीतिक छलावा, विकास योजना के लाभ से वंचित, संस्कृतिह्रास, भाषा आदि ऐसे मुद्दे है, जिसे प्रकाश में लाना अति आवश्यक है। हिन्दी में आदिवासी साहित्य विमर्श अत्यन्त कमजोर परिवेश में जन्मा है। कमजोरों के साथ शायद विमर्श की आवाज भी दबी–कुचली है।***

***कुंजीभूत शब्द–आदिवासी विमर्ष, सशक्तिकरण, आदिवासी शोषण, दयनीय, आर्थिक उदारीकरण, प्रताड़ना, बाजारवाद, छलावा,विस्थापन।***

डॉ0 विनायक तुकाराम के शब्दों में– ''प्रत्येक सदी में छला, सताया गया, नंगा किया गया और एक सोची–समझी साजिश के तहत वन, जंगलों में लोगों द्वारा भगाया गया एक असंगठित मनुष्य अपनी स्वतन्त्र परम्परा से सहस्त्र सालों से गाँव देहातों से दूर घने जंगलों में रहने वाला संगहीन मनुष्य।''इसी बात की पुष्टि या सहमति में डॉ0 रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि ''सदियों पहले आर्यों से परास्त होकर ये लोग जंगलों में खदेड़ दिए गये थे। सामूहिक जिन्दगी जीने वाले प्रकृति प्रेमी, प्रकृति के सहयात्री और सहयोगी आदिवासी समूह सम्पत्ति की धारणा व लिंग विभेद के भेदों के बिल्कुल अनजान थे, वे सदियों से जंगलों के फल, कंद–मूल खाकर नदियों के पेट में या जंगलों में झूम खेती करते हुए बड़े स्वाभिमान सहित अपनी भाषा, संस्कृति और जीवन शैली को जिन्दा रखे हुए थे।''

ब्रिटिश शासन, सामंतवादी, औद्योगीकरण, कल–कारखाने, पूँजीवादी राजनीति, धर्म द्वारा शोषित वनवासी की पीड़ा मुखरित हुई है। जंगल में रहने वाले ये आदिवासी साहूकारों, ठेकेदारों, पुलिस, शासकीय अधिकारियों द्वारा रोज ठगे जा रहे हैं। विशेष ध्यान आदिवासी स्त्रियों पर है जिनकी स्थिति अत्यन्त गंभीर और सोचनीय विषय है। इनका जीवन और भविष्य भी तल की गहरी खाई में डूब चुका है। आधुनिक युग में होने वाले विकास व औद्योगीकरण के कारण इन्हें जल, जंगल, जमीन से बेदखल कर विस्थापन जैसी यातना झेलनी पड़ रही हैं। विभिन्न उपन्यासकारों ने आदिवासियों की समस्याओं से जुड़े जीवन का गहन अध्ययन कर उसके अलग–अलग स्वरूप का खाँका खींच आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, ग्लोबल रूप में विमर्श का मुद्दा बनाया है।

प्रतिभा राय अपने उपन्यास ''आदिभूमि'' में उड़ीसा के जन–जातियों के जन–जीवन उसके परिवेश की इर्द–गिर्द रचा कथा विन्यास को एक अलग एवम् नये रूप में प्रस्तुत करती है। लेखिका स्वानुभूति और यथार्थ का संबल लेकर कथा को एक नई दिशा देने में सफल रही है। यह उपन्यास उड़ीसा के आदिवासी 'बोडा' जनजाति पर लिखा गया है। इस उपन्यास में बोडा वनवासी के जीवन शैली पर प्रकाश डाला गया है। उनकी सभ्यता, संस्कृति, रहन–सहन, व्यवहार, हिंसा, विरोध, सरलता, लोकरूढ़ि, अंधविश्वास, स्त्री–पुरूष सम्बन्ध, स्त्री शोषण आदि का यथार्थ रूप चित्रित है।

प्रतिभा राय ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हो रहे इनके प्रति अन्याय को तथा शोषण से सम्बन्धित कार्यों को बड़ी सजगता के साथ उजागर किया है। इतना ही नहीं सरकारी योजना के लाभ से वंचित तथा उसमें व्याप्त लूटखसोट, भ्रष्टाचार, स्त्रियों के शोषण की समस्या को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती है। लेखिका स्वयं संस्कृति को अपने में महसूस एवम् अनुभव के द्वारा उसकी बहुरंगी छवियाँ उभारने का प्रयत्न करती है।

तेजिन्दर का उपन्यास ''काला पादरी'' मध्य प्रदेश में बसे इन आदिवासियों की स्थिति का अत्यंत दर्दनाक दस्तावेज है। इन आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या निर्धनता है। इसी कारण वनवासी अपने आहार के लिए पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर होते हैं। जंगल से जड़ी–बूटी तथा मांस भी भोजन के रूप में लेते हैं। इसी भूख से निजात पाने हेतु इन्होंने ईसाई धर्म कुबूल कर लिया है। इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र ''जेम्स खाखा'' जो आदिवासी था उसने इस समस्या के कारण धर्म परिवर्तन कर लिया। धर्मान्तरण की समस्या आदिवासियों में दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। ''जब भूख के कारण एक आदिवासी बीमार पड़ जाता है तब उसे झाड़–फूंक के लिए बैगा के पास ले जाते हैं तब खाखा स्पष्ट शब्दों में कहता है कि 'इस आदमी को देवता नहीं चावल बचा सकते हैं। यह आदिवासी भोले–भाले होते हैं। इसलिए इन्हें रोटी–दवाईयाँ आदि का लालच दिखाकर ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता है।

डॉ0 संजीव कुमार दुबे का अभिमत है कि ''काला पादरी'' काले यूरोप में बदल चुके सरगुजा अंचल के आदिवासियों के अतीत और वर्तमान का ऐसा आख्यान है जो आदिवासी अस्मिता के उदय और भविष्य के नये स्वप्न का संकेत देता है। धार्मिक और राजनीतिक रूप से बिल्कुल उदासीन इस अंचल के आदिवासियों को धार्मिक पहचान देने और अपना स्वार्थ साधने की सामंती और मिशनरी कोशिशों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करता है काला पादरी।''

अस्तित्वहीन बनते इन आदिवासियों की पीड़ा भी लेखक ने उन्हीं के द्वारा व्यक्त किया है – उपन्यास का नायक जेम्स खाखा फादर से पूछता है – ''क्या यह सच नहीं है कि हमारी इमेजेज में पहाड़ थे, नदियाँ थी, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकोनॉमिकली एक्सप्लायट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू यदर टेम्स अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिए हिन्दू फंडामेंट लिस्टों और आप में कोई खास फर्क नहीं है। हमारी इमेजेज छीन ली आप लोगों ने।''

तेजिन्दर ने आदिवासी समाज में व्याप्त अंधविश्वास, भूखमरी, अकाल, कर्मकाण्ड, धार्मिक अंधानुकरण, सामंतवाद आदि का गहन चिन्तन के साथ चित्रण किया है। इनकी मूर्खता इतनी है कि ये भूख से मरते हुए भी अंधविश्वास के कारण ''शरीर में दुष्ट आत्मा ने प्रवेश किया ऐसी अवधारणा को मानते हैं। दूसरी ओर ब्रदर हरपाल दंगाई शिविर चलाते हैं और कहते हैं कि भूख से पीड़ित सिर्फ एक

**अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक**

व्यक्ति को चंगा कर सकते हैं। अन्ततः कहा जा सकता है कि आदिवासी समुदाय ईसाई–हिन्दू संगठन के बीच फँसा आदिवासियों की दयनीय स्थिति का वर्णन है।

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास ''पठार पर कोहारा'' के केन्द्र में झारखण्ड के आदिवासी हैं। जिनके बदलते परिवेश, भौगोलिक परिस्थितियाँ, सामाजिक–आर्थिक वैषम्य से उपजे वर्ग संघर्ष, पुलिस व्यवस्था की अकर्मण्यता, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अधिकारियों की संदिग्ध भूमिकाएँ गाँवों में हो रहे बदलाव तथा आन्दोलनकारी संगठनों का सामाजिक–राजनीतिक हस्तक्षेप, वर्ग संघर्ष तथा आपसी टकराव, की भयंकर दुनिया है।

''पठार पर कोहरा' पुस्तक में प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा – ''प्रस्तुत उपन्यास में इन क्षेत्रों में शोषण उत्पीड़न और अत्याचार के नये–नये दुश्चक्रों के जाल में फँसे जनजातीय मानस को सजग करते, उनमें अस्मिता के बीच अँकुराते एक संवेदनशील और दृढ़ इच्छाशक्ति वाले नायक की कथा है, साथ ही हताशा में घिरी एक आदिवासी युवती के आत्मसंघर्ष एवम् नारी–मुक्ति की कहानी है। अन्त में श्रम, उद्यम और सहभागिता के लिए संघर्षशील जनजाति की यह कथा इस उत्तर की बेचैन खोज भी है कि हिन्दू धर्म के विराट कैनवास पर उनकी क्या जगह है?'' उपन्यासकार ने आदिवासियों के जीवन का गहन अध्ययन कर उनके दुःख दर्द का त्रासदमय स्थितियों को प्रस्तुत किया है। आदिवासी जनजीवन की भाषा शैली, संस्कृति, रीति–रिवाज, मिथक और आस्थाओं में जकड़ी सभ्यता का यथार्थ रूप से भली–भाँति परिचित कराते हुए भ्रष्टाचार, गुण्डई को उसी रूप में चित्रित करते हैं।

शरद सिंह का उपन्यास ''पिछले पन्ने की औरतें'' प्रकृति और संस्कृति में जीवन यापन करने वाले यह आदिवासी समाज विकास और सभ्यता के नाम पर अति पिछड़ा हुआ वर्ग है। आदिवासी और ऊपर से स्त्री आदिवासियों की स्थिति ठीक वैसी है जैसे काली रात में बारिश। स्त्रियाँ अपनी स्थिति से ऊब कर उदासी–अवसाद के क्षेत्र में ढकेल दी जाती है जहाँ पर घुटन भरी जिन्दगी ही उनके हिस्से का सच बचता है। शरद सिंह ने रिपोर्ताज शैली में बनवासी स्त्रियों की अपराजेय अदम्य जिजीविषा और संघर्षमय जीवन का हृदयग्राही चित्रण किया है। ''पिछले पन्ने की औरतें'' बेड़िया समाज को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। ''इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें बेड़िया समाज की औरतों को केन्द्र में रखकर उनके विवश जीवन को उकेरा गया है। यह आदिवासी स्त्री प्रगति की मुख्य धारा से वंचित है और पुरूष प्रधान समाज में उसका दैहिक मानसिक और आर्थिक शोषण होता है।

हरिराम मीणा का उपन्यास ''धूणी तपे तीर'' वर्तमान भारतीय मुख्य धारा के साहित्यकारों ने समाज से जंगल तक फैले व्यक्तियों के समूह जो आदिवासी की संज्ञा से विभूषित है इनके प्रति अपनी करूणामय दृष्टि से संवेदनात्मक स्तर पर चित्रण किया है। विकास के नाम पर हो रहे छल से छले गये इन आदिवासियों ने विस्थापन का दंश झेला है। उद्योगपति, पूँजीपति, सामंती सोच वाले सेठ–साहूकार, सरकार, वन विभाग सभी ने इनके साथ अन्याय किया है। इतना ही नहीं धर्म ने भी इन्हें अस्तित्व विहीन करके छोड़ दिया है। जल, जंगल, जमीन पर आश्रित प्रकृति तथा पर्यावरण के बीच रहने वाले इन आदिवासियों का जीवन समकालीन आधुनिक गतिविधियों से अधिक प्रभावित है। जंगल नष्ट हो रहे हैं, फैक्ट्रियाँ लगायी जा रही है जिस कारण उनके सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

''श्रीमती अजित गुप्ता ने राजस्थान प्रदेश के मेवाड़ में स्थित भील आदिवासियों को दृष्टिकेन्द्र में रखकर ''अरण्य में सूरज'' का सृजन किया है। ''भीलवास'' में स्थित भील समाज का आर्थिक–सामाजिक एवम् धार्मिक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। इसमें भील समाज में व्याप्त बाल मजदूरों, बाल विवाहों जैसी कुप्रथाओं का विवेचन किया गया है। भीलवास की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यहाँ काम न होने के कारण पुरूष वर्ग शहर में जाता है और गरीब परिवार को संभालता है। परन्तु शहर में परिवार से अलग रहने के कारण पुरूष वर्ग ऐसी–वैसी बीमारियों का शिकार हो जाता है। इस उपन्यास में समाज सुधारक स्वामी परमानन्द द्वारा आदिवासियों के लिए किए जा रहे प्रयत्नों का उल्लेख हुआ है।''

रणेन्द्र कृत ''ग्लोबल गाँव के देवता'' सन् 2009 में प्रकाशित हुआ और अभी तक इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह उपन्यास आदिवासी केन्द्रित अत्यंत मार्मिक पृष्ठभूमि पर रचा गया है। रणेन्द्र ने वनवासी समाज के द्वारा उनके त्रासदमय जीवन शैली की पूरी व्याख्या की है। ग्लोबल विदेश के इस युग में व्यापारी, नेता पुलिस, शासन, पूँजीपति, सामंतवादी विभिन्न कंपनियाँ केवल आदिवासियों को शोषण करने की नीतियाँ अपना रही हैं। रणेन्द्र ने आदिवासी समाज में व्याप्त रीति–रिवाजों, संस्कारों, प्रथाओं, उत्सवों तथा इन सब के बीच घिरी उनकी संकीर्ण मानसिकता को उजागर किया है। आज की 'जीवन पद्धति' ''लिव इन दुगेदर'' पर आश्रित हो गयी है। इसका भी जिक्र उपन्यास के केन्द्र में है।

उपन्यासकार आदिवासी समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय तथा अत्याचार का जमकर विरोध करता हुआ दृष्टिगत होता है। समग्रतः यह स्पष्ट होता है कि ''ग्लोबल गाँव के देवता'' में देवराज इन्द्र से लेकर ग्लोबल गाँव के देवता, नेता, व्यापारियों और बाबाओं द्वारा आदिवासियों के शोषण की सम्पूर्ण कथा को उजागर किया गया है। रणेन्द्र ने यथार्थ कथा विन्यास को अभिव्यक्त कर उनके पक्ष में अपनी बात रखी है। उपन्यास के सन्दर्भ में अल्पना सिंह का विचार है कि ''ग्लोबल गाँव के देवता'' उपन्यास में भूमण्डलीकरण के दौर में आदिवासियों की तबाही, बरबादी, लूट, बेदखली आदि का चित्रण हुआ है।''

आदिवासी निरक्षर और सरल स्वभाव के होने के कारण साहूकारों, जमींदारों, ठेकेदारों के द्वारा आर्थिक रूप से शोषित हैं आदिवासी स्त्रियाँ छोटी–छोटी वस्तुएँ तैयार करती हैं, जैसे टोकरियाँ, सूप, पंखे, रस्सी इत्यादि इससे अपने परिवार का भरण–पोषण करती है। कुछ आदिवासी जैसे कबूतरा अपराधी प्रवृत्ति से जुड़े हैं चोरी, डकैती और नशीली दवाईयाँ बेचना। ग्लोबल गाँव के देवता में असुर आदिवासियों का शोषण ग्लोबल गाँव के देवता अर्थात् वेदान्त जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और टाटा कंपनी करती है। जो लोहे की वस्तुएँ असुर बनाते हैं; उन्हें टाटा की फैक्ट्रियों में बनाने के कारण असुर भूखे मरने पर विवश हो गये हैं। असुर से उनका जंगल और आदि पेशा छूटता जा रहा है और आधुनिक आर्थिक तंगी ने उनके सामने रोज नई–नई समस्याएँ खड़ी कर रहा है।

रणेन्द्र अपने उपन्यास ''गायब होता देश'' में आदिवासी समस्या और उनसे जुड़े विभिन्न प्रश्नों को उभारने का प्रयास करते हैं। उपन्यास एंथ्रोपोलॉजी के विशाल जलसाहार का कोई रंगीन आख्यान नहीं है। बल्कि मुंडा आदिवासी समाज के संकट, शोषण, लूट, पीड़ा और प्रवंचना का इतिहास है – किस तरह सोना लेकन दिसुम विकास के नाम पर रियल एस्टेट द्वारा ग्लोबल भूमण्डलीकृत पतन का शिकार है। पूर्वकथन 'सोना लेकन दिसुम' से आरम्भ होकर यह उपन्यास इक्यावन ''कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक'' में आदिवासी समुदाय के परिवेश परम्परा और तमाम झंझावतों से जूझती परिस्थितियों से परिचित कराया है। सांस्कृतिक ह्रास का भी लेखक ने अपने उपन्यास में वर्णित रूप प्रस्तुत किया है। ''इन्हीं जरूरत से ज्यादा समझदार इंसानों की अंधाधुंध उड़ान के उठे गुबार–बंवडंर में सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा था। सरना – वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग–बुरू बोगा, पहाड़ देवता

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखेरने वाली, हीरों से भरी सारी नदियां जिनमें इकिर देवता बोंगा – जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुंडाओं के बेटे–बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसुम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।''

महुआ माजी का उपन्यास ''मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'' में आदिवासियों की संस्कृति, परम्परा, रूढ़ि, अंधविश्वास तथा धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से जुड़े सन्दर्भों को प्रस्तुत करता है। विकास और विस्थापन की समस्या तथा विकीरण जैसी ग्लोबल समस्या को स्थानीय से निकाल कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा किया है।

''आदिवासी समाज, जो जंगल और पहाड़ों को अपना देवता मानता है, उनकी रक्षा करने को उद्यत है परन्तु कभी उनकी इस कोशिश को माओवादी या कभी नक्सलवादी गतिविधि घोषित कर सभ्य समाज उन्हें हर तरह से नेस्तनाबूद करने पर उतारू हो जाता है। विकास तथा विस्थापन को केन्द्र में रखकर उनके उपन्यास हिन्दी में आए हैं, लेकिन महुआ माजी का सद्यः प्रकाशित उपन्यास ''मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'' उसी भावभूमि पर एक नए क्षितिज को उद्घाटित करता है।''

वर्तमान समस्या आदिवासियों के पक्ष में अपने दायित्व का निवर्हन साहित्य कर रहा है। इनकी रचनाओं में जातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक, पारम्परिक, रूढ़ियां, राजनैतिक, स्त्री शोषण, प्रदूषण, विस्थापन, भूख, शिक्षा आदि ज्वलंत प्रश्नों के साथ सरकार के विरूद्ध संघर्ष के लिए तत्पर है। यह लेखक अपने जीवन–शैली में सुधार लाने हेतु अपनी बात बड़ी ही सहजगता और व्यंग्य का सहारा लेकर कर रहे हैं। इतना ही नहीं समाज और सरकार से उपेक्षित इन वनवासियों के पक्ष में हमारा हिन्दी साहित्य विस्तृत रूप में उभर कर सामने आया है। आदिवासी समाज के लगभग सभी संदर्भों को वर्तमान से जोड़ते हुए हिन्दी साहित्य ने उसे गंभीर समस्या का रूप देते हुए कुरेदने का सार्थक प्रयास किया है। लगभग आदिवासी लेखन का श्रेष्ठ कार्य जैसा वर्तमान में चल रहा है वह अपने आप में महानतम् कार्य है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सं0 – महेश शंकर चौधरी – हाशिये की बेचारगी, पृ0 250.
2. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 रावेन्द्र कुमार साहू, आदिवासी विमर्श : स्वरूप जनतांत्रिक मूल्यों की तलाश, पृ0 51.
3. सं0 – डॉ0 ऊषा कीर्ति राणावत – आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ0 134.
4. काला पादरी – तेजिन्दर, पृ0 45.
5. राकेश कुमार सिंह – पठार का कोहरा – पृ0 आवरण से.
6. डॉ0 स्वाति नारखेड़े – हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, पृ0 39.
7. सं0 – डॉ0 गीता वर्मा, डॉ0 रवि कुमार गोंड – वर्तमान समय में आदिवासी समाज, पृ0 156.
8. रणेन्द्र – गायब होता देश, पृ0 3, पेंगुइन रैंडम हाउस हरियाणा, प्र0सं0 2014.
9. सं0 – ऊषा कीर्ति राणावत, आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, पृ0 122.

*****